IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय दर्शन के सन्दर्भ में जैन दर्शन की समीक्षा

डॉ वीरेन्द्र कुमार
इन्चार्ज, संस्कृत एवं पालि विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

भारत में दर्शन की सुदीर्घ परम्परा रही है। ज्ञान के द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य रहा है। वेद से लेकर सभी भारतीय दर्शनों ने सृष्टि के रहस्यों को उद्घाटित करने में अपना योगदान दिया है। भारतीय दार्शिनक परम्परा के अनुसार नास्तिक और आस्तिक दर्शन के आधार पर दर्शन द्विधा विभाजित है। नास्तिक दर्शनों मे चार्वाक्, जैंन, और बौद्ध एवं आस्तिक दर्शनों में सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, मीमांसा-वेदान्त।

जैन दर्शन भी भारतीय दार्शनिक परम्परा की अनुपम देन है। 'जिन' द्वारा प्रवर्तित मार्ग या दर्शन ही जैन दर्शन है। राग द्वेष आदि विकारो का दमन कर उनपर विजय प्राप्त करने वाले ही 'जिन' कहे जाते हैं।

'रागद्वेषादिमनोविकाराञ्जयतीति जिनः।'[1]

'जिन एव उपास्य देवता अस्य अस्ति इति जैनः।'[2]

वेदों को प्रामाणिक रूप से स्वीकार न करने और ईश्वर की सत्ता को न मानने के कारण जैन दर्शन को अवैदिक और नास्तिक दर्शन कहा गया। जैन दर्शन के अनुसार सृष्टि रचना प्रक्रिया तर्काश्रित है। जीवन की यथार्थता और प्राणिमात्र का यथार्थ रूप में वर्गीकरण ही जैन दर्शन का वैशिष्ट्य है। जैन दर्शन की आचार मीमांसा और समन्वयवादी दृष्टि समाज को ऐसी अनुपम देन है जिसने विभिन्न विचार धाराओं में व्याप्त विरोध का शमन किया और अन्य मतों को भी आदर प्रदान कर कलुषीत एकाङ्गी दृष्टि को अनुचित कहा।

जैन दर्शन में बन्धन के कारणों का अभाव तथा निर्जरा से समस्त कर्मों से मुक्त होना ही 'मोक्ष' है।

'बन्धनहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षणं मोक्षः'[3]

मोक्ष प्राप्ति हेतु जैन दर्शन में त्रिविध साधनों का उल्लेख हुआ है।

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'।[4]

अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। जैन दर्शन में इन्हें त्रिरत्न/रत्नत्रय की संज्ञा दी गई है। इन्ही रत्नत्रय से बन्धन के कारणों का क्षय होने से जीव जिनत्व को प्राप्त कर सर्वज्ञ हो जाता है। जैन दर्शन की सम्पूर्ण आचार मीमांसा इन्हीं त्रिरत्नों पर आश्रित है।

सम्यक् दर्शन से अभिप्राय तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों और तत्व ज्ञान के प्रति श्रद्धा का भाव रखना सम्यक दर्शन कहलाता है।

'नं सम्यक् दर्शनमिति'।[5]

यथार्थ सत्ता के प्रति विश्वास ही जैन दर्शन का प्रमुख सिद्धान्त है। उनका मत है कि न तो हमे जिनों के प्रति पक्षपात है और न ही कपिल आदि आचार्यों के प्रति द्वेष। जिसका भी तर्क युक्तिसंगत हो वही मान्य है।

न मे जिने पक्षपातः न मे द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तद्ग्राह्यं वचनं मम॥[6]

जैन आचार्यों द्वारा सम्क दर्शन धारणा नहीं अपितु स्वानुभूत प्रत्यक्ष है। इसीलिए युक्तियुक्त तत्वों मे विश्वास करना ही सम्यक् दर्शन है।

सम्यक् ज्ञान से अभिप्राय मिथ्या दृष्टि की निवृत्ति है। जीव तथा जीव की पृथकता का ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है।
'स्वपरान्तरं जानाति यः सः जानाति'।[7]

शास्त्र एवं आचार्यों का उपदेश भी सम्यक् ज्ञान कहा गया है। यदि यह उपदेश मोक्ष में सहायक और मिथ्या दृष्टि का निवारक हो।

एवं पवद्यनसारं पचत्थिय संगहं किमाणिता।
जो मयदि रागदोशेगाइदि दुखपरिमोक्खं॥[8]

मानव जीवन में चरित्र का बहुत महत्व है। जैन मत के अनुसार चरित्र को केवल बुद्धि से नहीं अपितु अनुभव, अस्तित्व और समग्र सत्ता से आजीवन संरक्षित करने की आवश्यकता होती है। चिन्तन मात्र से चरित्र का निर्माण नहीं हो सकता क्योंकि चिन्तन का अधार बुद्धि होती है। जिस प्रकार सागर की सतह पर उठती लहरों का कोई स्थायित्व नहीं होता उसी प्रकार केवल बौद्धिक चिन्तन से चरित्र निर्माण नहीं हो सकता। चरित्र निर्माण हेतु अनुभव और सम्पूर्ण सत्ता से जीवन में चरित्र के महत्व को जानना अत्यावश्यक है। जैन आचार्यों द्वारा चरित्र के दो अंश प्रतिपादित किए गए हैं, प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक। प्रवृत्तिमूलक चरित्र सांसारिक बन्धन का और निवृत्तिमूलक चरित्र मोक्ष का कारण है। राग द्वेष आदि दुर्गुणों का त्यागकर जो आचरण किया जाए उसे सम्यक चरित्र कहते हैं।

उपर्युक्त सम्यक् दर्शन-सम्यक ज्ञान-सम्यक चरित्र त्रिरत्न जो जैन दर्शन के आधार स्तम्भ हैं। वे वैदिक धर्म के भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग को ही पुष्ट करते हैं। क्योंकि सम्यक दर्शन में तीर्थंकरों के वचनों के प्रति श्रद्धा को सर्वोपरि माना है। जबकि भक्तियोग में भक्ति आराध्य के प्रति राग के चतुर्विध स्वरूपों (स्नेह, प्रेम, श्रद्धा और भक्ति) में सर्वोत्तम है। अपने आराध्य के प्रति अनन्य श्रद्धा ही भक्ति है। जैन दर्शन के सम्यक् ज्ञान और वेदान्त मे वर्णित ज्ञान परस्पर साम्य अभिलक्षित होता है। वेदान्त में भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप का बोध ही ज्ञान रूप में निर्दिष्ट है। सम्यक् चरित्र ही कर्मयोग का महत्त्वपूर्ण अंश है। इस आधार पर देखा जाए तो जैन धर्म बौद्ध धर्म की अपेक्षा वैदिक धर्म के अधिक निकट है। दार्शनिक दृष्टि से सांख्य दर्शन और जैन दर्शन के निरीश्वर वाद में पर्याप्त साम्य है। सृष्टि और पुरुष की पृथक सत्ता का जितना समर्थक कपिल का सांख्य है उतना ही जैन दर्शन भी। जैन दर्शन आत्मा का परम उद्देश्य साधना एवं तपश्चर्या को वर्णित करता है। वहीं वेदान्त में भी जीवनमुक्ति के लिए ब्रह्म का ज्ञान अनिवार्य है। वेदान्त का जीवन्मुक्त ही जैन धर्म का सिद्ध जीव एवं अर्हत् है।

जैन दर्शन के अनुसार कर्म परित्याग से मोक्ष की प्राप्ति होती है। मानव जीवन की सभी पलब्धियां कर्मजन्य है कर्म द्वारा ही सभी राग-द्वेष आदि की उत्पत्ति होती है और रागद्वेष ही पुनः कर्म का कारण बनते है। इसी प्रकार संसार में स्थिति जीवों के भावों से रागद्वेषभाव उत्पन्न होते है। ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, वेदनीय और मोहनीय आदि कर्मों की अनेक श्रेणियां हैं। ये चतुर्विध अन्तराय ही जैन दर्शन के घातीयकर्म हैं।[9]

नवीनकर्मों के अवरोध एवं प्राचीन कर्मों की क्षीणता के लिए जैनदर्शन में पण्चमहाव्रत समिति, गुप्ति, धर्म अनुप्रेक्षा, परिग्रह जय और चरित्र अपायों का वर्णन प्राप्त होता है।
कुछ जैनाचार्य उपर्युक्त उपायों में से पञ्चमहाव्रतों को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं और कर्मों कि क्षीणता के लिए अंहिसा, सत्य , अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पञ्चमहाव्रतों को ही कर्म क्षीणता का आधार मानते हैं ।

अंहिसा से अभिप्राय केवल हिंसा के त्याग मात्र से नहीं अपितु विश्व के समस्त प्राणियों के प्रति दयालुता का भाव रखना है। हिंसा के परित्याग को अहिंसा समझ लिया जाए तो वह जीवन स्पर्शी नहीं हो सकती, यह किसी उपलब्धि होनी चाहिए अंहिसा शब्द यद्यपि नकारात्मक है परन्तु इसकी अनुभूति नकारात्मक नहीं है। यह अनुभूति शुद्ध प्रेम की है। प्रेम सम्बन्ध हो तो राग है और प्रेम स्वभाव हो स्थिति हो तो वीतराग है। यह वीतराग प्रेम ही अंहिसा है।

सत्य अंहिसा का रक्षक है। मन, वचन, कर्म द्वारा मिथ्या आचरण का परित्याग कर यथादृष्ट यथाश्रुत किसी वस्तु के

स्वरूप का कथन ही सत्य कहलाता है। महावीर ने सत्य को भगवान के स्वरूप में माना है **"सच्चं खु भगवम्"**।[10]

अस्तेय से अभिप्राय चोरी न करना, मात्र नहीं अपितु अस्तेय से तात्विक अर्थ दूसरे के भाग का धन अथवा अन्य वस्तु ग्रहण न करना है। जैन दर्शन में चोरी के चार प्रकार बताये गये हैं- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। परिणाम स्वरूप जो अपना नहीं है उस द्रव्य का ग्रहन न करना और उस प्रकार के द्रव्य की स्पृहा न करना ही अस्तेय है।

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्चिद जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥"[11]

अर्थात् ये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे ईश्वर का वास है। इसलिए इस जगत् का त्यागपूर्वक उपभोग करो। किसी के धन की इच्छा मत करो।

यहाँ 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' जैन दर्शन के अस्तेय महाव्रत के प्रसंग में विचारणीय है। पर द्रव्य की स्पृहा न करने को अस्तेय कहा गया है। वह स्पृहा सामान्यतः तीन प्रकार की होती है- वित्त स्पृहा, पुत्रस्पृहा और लोक स्पृहा। इन तीनों में वित्तेषणा सबसे प्रबल होती है। इसलिए मन्त्र में किसी के धन न ग्रहण करने की चर्चा हुई है। अन्य दोनों पुत्रस्पृहा और लोकस्पृहा का भी इसी से बोध होता है।

जैन दर्शन में वर्णित चतुर्थ महाव्रत ब्रह्मचर्य को जानने हेतु दक्षस्मृति का उद्धरण ध्यातव्य है-

स्मरणं कीर्तनं केलिः पेक्षणं गुह्यभाषणम् संकल्पोऽध्यवसाय क्रियानिष्पत्तिरेव च।
एतन्मैथुनाष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥[12]

उपर्युक्त अष्ट अब्रह्मचर्य के कारणों का त्याग ही ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचर्य भारतीय संस्कृति का प्रमुख तत्त्व है। आत्मसाक्षात्कार ब्रह्मचर्य के बिना नहीं हो सकता । मुण्डकोपनिषद् का यह मन्त्र इस तथ्य की पुष्टि करता है।

"सत्येन लह्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्"।[13]

योगी के लिए मन को काम्यविषयक संकल्प से शून्य होकर जननेन्द्रिय को मर्महीन करने पर ही ब्रह्मचर्य सिद्ध होता है।

विषयासक्ति का त्याग करना ही अपरिग्रह है जैन दर्शन के अनुसार आवश्यकता से अधिक के संग्रह से आत्मा क्षरित होती है। मान का अहंकार ही संग्रह प्रवृत्ति को जन्म देता है फिर चाहे संग्रह धन का हो या मान सम्मान पद प्रतिष्ठा का। अहंकार से संग्रह की प्रवृत्ति और अहंकार अज्ञान का द्योतक है। अज्ञान का निवृत्ति से ज्ञान और ज्ञान से ही आत्म-साक्षात्कार होता है। अप्रिग्रह और अस्तेय दोनों महाव्रतों में ही सांसारिक विषय वस्तुओं के प्रति त्याग का भाव अभिलक्षित होता है। योगदर्शन के अनुसार अर्जन, रक्षण , क्षय, संग और हिंसा इन पांच प्रकार के दोषों को को देखकर विषयों को ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है।

"विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रह"[14]

क्योंकि विषय के अर्जन, रक्षण, क्षय और संग करने से दुःख होता है। इस प्रकार इन दुःखों से मुक्ति चाहने वाले के लिए विषयों का परित्याग अनिवार्य है। श्रुति में भी इसी मत की पुष्टि करता है।

"त्यागेनैकऽकेमृतत्वमानशुः"[15]

जैन दर्शन में वर्णित उपर्युक्त पांचमहाव्रतों को वैदिक दर्शन भी अपरिहार्य मानता है।
आत्मबोध और ईश्वर प्राप्ति के साधन भूत इन महाव्रतों को योग दर्शन में योग के प्रथम अंग यम के अन्तर्गत समाहित किया गया है।

"**अंहिसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः"।**[16]

योगदर्शन में चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है और चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए अष्टाङ्ग योग का वर्णन प्राप्त होता है जिनके द्वारा चित्तवृत्तियों को शान्त कर आत्मबोध का पथ प्रशस्त होता है।

जैन दर्शन में वर्णित पंचसमिति (ईया, भाषा, एषणा,आदान और उत्सर्ग) और त्रिधा गुप्ति (कायगुप्ति, वाग्गुप्ति, मनोगुप्ति) ये सभी चित्त को निर्मल करने की विधियां है।[17]

"भारतीय दर्शन के सन्दार्भ में मानसिक वाचिक और कायिक दोषों के परित्याग के अन्तर्गत समाहित है। योगदर्शन में वर्णित योग के द्वितीय अंग नियम के अन्तर्गत शौच का भी यही प्रयोजन है।

"तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम्। आभ्यान्तरं चित्तमलक्षालनम्"।[18]

धर्म की चर्चा करते हुए जैन दर्शन में दशलक्षणों का वर्णन हुआ है। यद्यपि धर्म शब्द से व्याख्यायित नहीं हो सकता यह धारण करने का विषय है। शब्द मात्र धर्म की ओर जाने का संकेत मात्र हो सकते हैं । क्षमा , मार्दव, आर्जव, सौच, संयम, सत्य, तप,त्याग, अकिञ्चन और बर्हमचर्य ये धर्म लक्षण जैन दर्शन में प्रतिपादित किये गए हैं।[19]

मनुस्मृति में भी धर्म केदश लक्षणों की चर्चा हुई है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥[20]

जैन दर्शन में अनुप्रेक्षा के अन्तर्गत द्वादश भावनाओं का प्रतिपादन हुआ है। अनुप्रेक्षा से अभिप्राय मनुष्य द्वारा अपनी इष्ट वस्तु का पुनः पुनः चिन्तन करना है। असत्य, अशरण संसृति , एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म भावना से द्वादश भावनाएं हैं।[21]

जीवन में आने वाले व्यवधानों को जैन दर्शन परीषह मनता है। इन परीषहों (बाधाओं) पर विजय प्राप्त करना परीषहजय है। तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में 22 प्रकार के परीषहजयों का उल्लेख है।[22]

उपर्युक्त अनुप्रेक्षा और परिषहो में वर्णित विषय वस्तुतः काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह जन्य है। इनके प्रित्याग जे बिना आत्मबोध नहीं हो सकता । गीता का सन्दर्भ इस प्रसंग में द्रष्टव्य है॥

ध्यायतो विषयान्पुन्सः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामाद् क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रन्शाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥[23]

ये सभी विषय मानव की बुद्धि को विकृत करते हैं। इसिलिए इनका त्याग करके या इन पर विजय प्राप्त करके ही साधक को अभीष्ट सिद्धि नहीं हो सकती।

जैन दर्शन के अनुसा देह के साथ जीवा का संबन्ध कराने का प्रधान कारण कर्म है। कर्म ही के बन्धन और कर्म विच्छेद को उत्पादित करने के लिए जैन दार्शनिकों ने सप्त पदार्थो की परिकल्पना की है। आस्रव, बन्ध संवर, निर्जरा, मोक्ष, जीव के साथ संबन्ध एवं अजीव के साथ संबन्ध ये सप्त पदार्थ है।[24]

उपर्युक्त सप्त पदार्थों की जो परिकल्पना जन दार्शनिकों ने की है वैदिक दर्शन भी इसका समर्थन करता है। ब्रह्मबिन्दूपनिषद् के अनुसार कर्म के बन्धन और विच्छेद का कारण मन है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयाक्सतं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्॥[25]

अतः इस कर्म बन्धन से संसार और कर्म विच्छेद मोक्ष की प्राप्ति होती है।

स्याद्वाद जैन दर्शन का प्रमुखस सिद्धान्त है। भगवान् महावीर ने भगवती सूत्र में इन तीन भङ्गो का उल्लेख किया है। इन्ही तीन भङ्गो को मूल भङ्ग माना जाता है। कालक्रम में ये भङ्ग सप्तभङ्गी नय में परिणत हो गए।

'स्याद्वाद' अपेक्षा का सिद्धान्त है। इस दृष्टि से एक ही वस्तु सत् और असत् दोनों हैं। ये सत् और असत् भाव प्रारम्भ में विरोधी प्रतीत होते हैं परन्तु विरोधी तत्त्वों का समन्वय करना ही जैन दर्शन के स्याद्वाद का परम उद्देश्य है। इस सिद्धान्त का वैशिष्ट्य यह है कि यह विरोधी धर्मों को भी समाहित करता है। किसी एक वाद को ग्रहण करना और दूसरे को नकारना संकीर्णता को दर्शाता है। जैन दार्शनिकों ने सभी विरोधी धर्मों को समाहित कर अपनी उदारता का परिचय दिया है।

जैन दर्शन अनीश्वरवादी दर्शन है। वह सृष्टिज्कर्ता ईश्वर को नहीं मानता। जैन दार्शनिक जगत् के कार्यत्व को स्वीकार नहीं करते अतः उअसके कर्ता को ईश्वर मानने की भी क्या आवश्यकता है। जैन दर्शन के अनुसार सत् का नाश नहीं होता और न ही असत् पदार्थो की सृष्टि हो सकती है। उत्पत्ति और विनाश पदार्थों के गुण के गुणों और प्रकारों के कारण होती है।[24]

जैनियों के इस मत की पुष्टि गीता भी करती है।

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।"[27]

जैनियों का मत है मानव अपने पुण्यकर्मों के प्रभाव से देवत्व को प्राप्त करता है। तब वह ईश्वर कहलाता है। ईश्वराराधना में जैनियों को अहिप्रेत हैं परन्तु तीर्थंकर इनके लिए ईश्वर है। तीर्थंकर आध्यात्मिक प्रेरणा और ज्ञान के पुञ्ज है।

जैन धर्म में पञ्चपरमेष्टि में की पूजा का महत्त्व है। पञ्चपरमेष्टि में अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु आते है। धार्मिक आस्था जैनियों को अभीष्ट है परन्तु तीर्थंकर को ही धर्मोपदेष्टा मानकर उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति रखना अनिवार्य है।

निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में जैन दर्शन विश्व के पदार्थों का आनुभविक वर्गीकरण प्रस्तुत करता है। ईश्वर की सत्ता में विश्वास न करते हुए भीश्रेय और शिव की वास्तविकता में इसका विश्वास है। रत्नत्रय और पञ्च महाव्रतो का सिद्धान्त जैन दर्शन का आधार है । भौतिक अनुभवों के अनुसार जीवों से संसार का निर्माण होता है। प्रत्येक जीव संयुक्त पदार्थ है। यह अनेकों में एक और एक में अनेक है। यही नानात्मक सत्ता स्याद्वाद द्वारा ही की जा सकती है। तत्त्व किसी दृष्टि से नित्य और शाश्वत हैं परन्तु दूसरी दृष्टि से अनित्य और परिणामी भी है। दोनों नितान्त विरोधी मतों मे समन्वय करना जैन दर्शन की विशेषता है। समस्त पदार्थों के पारस्परिक सम्बन्धो पर विचार किए बिना तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसीलिए जैन दर्शन में एक वस्तु का ज्ञान सभी वस्तुओं के ज्ञान का परिचायक माना जाता है।

एको भावः सर्वथा येन दृष्टः सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः।
सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः॥[28]

यही समन्वयात्मक दृष्टिकोण जैन दर्शन की विशालता को द्योतित करता है। "**नास्ति परलोक इति मतिर्यस्य स नास्तिकः**"इस व्युत्पत्ति के अनुसार जैन दरशन आस्तिक दर्शनों की श्रेणी मे आता है क्योंकि जैन दरशन परलोक की सत्ता को भी स्वीकार करता है और पुनर्जन्म में भी विश्वास रखता है। यदि नास्तिक शब्द की व्युत्पत्ति "**नास्तिको वेद निन्दकः**" करें तो वेद विरोधी होने के कारण जैन दरशन को नास्तिक भी कहा जा सकता है। जैन दरशन की आचार मीमांसा और समन्वयवाद समाज को अनुपम देन है। किसी न किसी दृष्टि सभी मत सत्य हैं ऐसी मान्यता से ही विरोधों का शमन सम्भव है। जैन सभी मतों का आदर करते हैं और यही भावना परस्पर वैमनस्य को समाप्त कर सकती है। एकाङ्गी दृष्टिकोण से मानव की दृष्टि दुराग्रहों से ग्रसित होकर कट्टरता को जन्म देती है और यही मानव जीवन में अवरोध का सबसे बड़ा कारण है। जैन दरशन ने अपने सिद्धान्तो से समन्वयवादी दृष्टि को देकर मानव कल्याण का पथ प्रशस्त किया है।

सन्दर्भ सूची

- भारतीय-दर्शन पृ- 201 मिश्र जगदीश चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
- वही पृ- 201
- तत्वार्थसूत्र- 10.2, उमास्वाति (विवेचक) पं.सुख लाल संघवी पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी
- तत्वार्थसूत्र- 1.1
- तत्वार्थसूत्र
- षड्दर्शनसमुच्चय टीका भाग, श्री हरि मदुसूरि (सं) डॉ महेन्द्र कुमार जैन भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 1986
- इष्टोपदेश-33 ले. जयकुमार जलज हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय
- पञ्चास्तिकाय, कुन्दकुन्दाचार्य, स. बालब्रह्मचारिणी कल्पना जैन तीर्थ धाम मंगलायतनम् हाथरस 2010
- वही
- भारतीय दर्शन पृ- 211
- ईशावास्योपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर
- अष्टादश स्मृति (7/31-32) टीकाकार पं सुन्दर लाल जी त्रिपाठी,खेम राज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई।
- मुण्डकोपनिषद् (3/1/5) गीताप्रेस गोरखपुर
- योग दर्शन सूत्र-30 व्यासभाष्य, स्वामी हरिहरानन्द आरण्य सं. रामशंकर भट्टाचार्य , मोतीलाल बनारसी दास 1953
- तै. आ. 10/10
- योगदर्शन -30
- तत्त्वार्थसूत्र-9.5
- योगदर्शन साधनपाद. 32

- तत्त्वार्थसूत्र-9.6
- मनुस्मृति
- तत्त्वार्थाधिगमसूत्र- 9.7
- तत्त्वार्थाधिगमसूत्र- 9.8
- गीता. 2/62-63, गीताप्रेस गोरखपुर
- तत्त्वार्थाधिगमसूत्र-1.4
- ब्रह्मबिन्दूपनिषद्-2, व्या. स्वामी शंकरानन्द, सैंट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट मन्धना , कानपुर
- पञ्चास्तिकायसार
- गीता-2.16
- षडदर्शनसमुच्चय